International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 720-725

'वाल्मीकिसम्भवम्' में अलंकार योजना : एक अध्ययन

मीनाक्षि कुमारी आर्या
षोधच्छात्रा, दिल्ली विष्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना : अलंकार

सामान्य लक्षण – अलंकार का शाब्दिक अर्थ है– शोभा को बढ़ाने वाला। जिस प्रकार स्त्रियाँ अच्छा दिखने के लिए आभूषणों का प्रयोग करती हैं, ठीक उसी प्रकार कवि अपने काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए अलंकारों का प्रयोग करते हैं।

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादिनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।।[1]

अर्थात् शोभा को अतिशयित करने वाले, रस भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं वे अंगद (बाजूबन्द) आदि की तरह अलंकार कहलाते हैं। जैसे मनुष्यों के अंगद आदि अलंकार होते हैं उसी तरह उपमा आदि काव्य के अलंकार होते हैं।

अलंकार शब्द का तात्पर्य

(क) अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः [2]

अर्थात् जो किसी को सुशोभित करने का साधक हो वह अलंकार कहलाता है। अलंकार रसादिकों को सुशोभित करता है। जहाँ रसादि नहीं हैं वहाँ वह किसी की शोभा का साधक नहीं, अतः वहाँ उसे अलंकार भी नहीं माना जाता, केवल विचित्रता मात्र मानते हैं। सरस वाक्य में ही उपमा आदि अलंकार कहलाते हैं।

(ख) अलंकरणम् अलंकारः अथवा अलंकृतिः अलंकारः अर्थात् अलंकरण ही अलंकार है।[3] यहाँ पाणिनीय सूत्र 'भावे' (3.3.18) से भाव के अर्थ में घञ् प्रत्यय हुआ है।

अलंकार व्युत्पत्ति – अलंकार काव्य में सौन्दर्य विधायक तत्त्व हैं काव्य में इनका प्रयोग भावों को सजाने एवं रमणीयता प्रदान करने के लिए होता है। इनसे अभिव्यक्ति में तीव्रता एवं भावों में प्रभावात्मकता आ जाती है। सुन्दर एवं भव्य विचार यदि मोहक शैली में व्यक्त किए जाएँ तो वह सोने में सुहागे को चरितार्थ करती है। अलंकार की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है–

(1) अलं करोति इति अलंकारः।[4]

जिसे देखते ही सहृदयगण कह उठे 'अलम्' अर्थात् इससे अधिक सौन्दर्य अन्यत्र नहीं है। वही अलंकार है। अर्थात् काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाले तत्त्व अलंकार हैं। अलंकार को संकुचित रूप में भी ग्रहण किया गया है–

(2) अलंकरणम् अलंकारः।[5]

अर्थात् आभूषण ही अलंकार हैं। जैसे आभूषणों से युवती का सौन्दर्य निखर उठता है उसी प्रकार कविता कामिनी का लावण्य भी अलंकारों से द्विगुणित हो जाता है।

इस प्रकार समय के साथ–साथ अलंकारों की परिभाषा बदलती रही है। आरम्भ में 'अलंकार' शब्द कटक–कुण्डलादि के सदृश उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों के लिए प्रयुक्त होता था। इसके विपरीत दण्डी ने इन्हें विस्तृत रूप में ग्रहण किया तथा सभी शोभादायक तत्त्वों को अलंकार कहा– काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।[6]

अलंकार के लक्षणानुसार गुणादि भी काव्य में शोभा को उत्पन्न करने के कारण इसी तत्त्व में समाविष्ट हो गए हैं। वामन ने भी इसे इसी रूप में ग्रहण किया – 'सौन्दर्यमलंकारः'। इन्होंने भी न केवल आभूषणों को अपितु काव्य में सुन्दरता लाने वाले सभी तत्त्वों को अलंकार कहा। इस प्रकार अलंकार दो रूपों में उपस्थित हुआ है– संकुचित रूप में तथा विस्तृत रूप में।

काव्यगत व्यापक अर्थ के रूप में – इस अर्थ में अलंकार प्रथम अर्थ की अपेक्षा अधिक व्यापक हैं। इसमें केवल अलंकार (शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार) तक ही सीमित नहीं, अपितु सौन्दर्यात्मक सभी तत्त्व इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। जैसे दण्डी ने कहा है–

यच्च संध्यंगवृत्त्यंगलक्षणादयागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलंकारतयैव नः।।[7]

अर्थात् इन्होंने संधि, वृत्ति, लक्षणादि सभी को काव्य के अलंकार कहा है।

अलंकारों का वर्गीकरण – अलंकारों का द्विधा वर्गीकरण सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट करते हैं– शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। अर्थालंकार का अवान्तर विभाजन– वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष में करते हुए आचार्य रुद्रट अन्य समस्त अलंकारों को इन्हीं चारों का भेद प्रभेद बताते हैं–

वक्रोक्तिरनुप्रासो यमकं श्लेषस्तथापरं चित्रम्।
शब्दस्यालंकाराः श्लेषोऽर्थस्यापि सोऽन्योऽस्तु।।[8]

---

1 सा.द., दशमः परिच्छेदः, कारिका –1
2 सा.द., दशमः परिच्छेदः, 10, पृ. 273
3 छन्दोऽलंकारसौरभम्, पृ. 54
4 अलंकारमीमांसा 3, पृ. 28
5 वही, 3, पृ. 28
6 का., 2/1
7 का., 3, पृ. 29
8 काव्यलंकार 2/13

यद्यपि अन्यान्य आचार्यों ने भी इसी प्रकार के स्वाभिमत प्रयास किए हैं किन्तु अलंकारों का सर्वसम्मत वर्गीकरण – शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के ही रूप में मान्य हो सका। प्रायः समस्त अलंकारसाधियों ने इसी परम्परा को स्वीकार करते हुए अलंकारों का विवेचन प्रस्तुत किया है। राजा भोज ने अवश्य ही 'उभयालंकार' की भी स्थापना की, जो मुख्यतः उन्हीं तक सीमित रही।

(1) शब्दालंकार – 'शब्दपरिवृत्यसहत्व'[9]

अर्थात् शब्द की परिवृत्ति (परिवर्तन) को न सह सकने का भाव। जो अलंकार शब्द विशेष की उपस्थिति में ही रहते हैं, उस शब्द का पर्याय रखते ही विनष्ट हो जाते हैं, शब्दालंकार कहे जाते हैं।

(2) अर्थालंकार – इसके विपरीत अर्थालंकार वह हैं जो शब्द विशेष को परिवर्तित कर देने पर भी अर्थगत सौन्दर्य की अक्षुण्णता के कारण बना रहता है। अर्थालंकार कहलाता है।

इस प्रकार अलंकार वह कथनशैली है जो काव्य में रमणीयता का आधान करती है। अतः काव्यशास्त्र के आरम्भिक काल से ही अलंकारों का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ तक कि ध्वनिवादी मम्मट जैसे आचार्य भी अलंकारों के व्यामोह से मुक्त नहीं रह सके।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि काव्य का सौन्दर्य दो तत्त्वों पर आधारित माना है– भावपक्ष (अन्तरतत्त्व) एवं कलात्मक (बाह्यतत्त्व)। भावपक्ष ध्वनि एवं रस पर आलम्बित है तथा कलात्मक अलंकार, गुण, रीति आदि पर।

(शब्दालंकार)

अनुप्रास – अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।[10]

अर्थात् स्वर में विषमता रहने पर भी शब्द की समानता को 'अनुप्रास' कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं– (1) छेकानुप्रास (2) वृत्त्यानुप्रास (3) श्रुत्यनुप्रास (4) अन्त्यानुप्रास (5) लाटानुप्रास।

(छेकानुप्रास)

लक्षण – छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।[11]

अर्थात् व्यञ्जन–समूह के एक वर्ण अनेक प्रकार से होने वाले साम्य को छेकानुप्रास कहते हैं। अनेक प्रकार से तात्पर्य है– स्वरूप तथा क्रम से।

उदाहरण –

ग्रहदशा रुचिरारुचिराथवा
भवतु कीदृगपीह जनुर्जुषाम्।
ध्रुवमसौ घटते किल जीवने
ग्रहगतिर्विफला नहि जायते।।[12]

यावांश्च यावद भवतीह येन
लाभस्समाजे कलिकालजानाम्।
तावांश्च तावत्परिपाल्यतेऽमुना
समं स्वधर्मो बत तैर्जनैरपि।।[13]

प्रस्तुत प्रथम श्लोक में 'रुचिरारुचिराथवा' में 'च' और 'र' की 'जनुर्जुषाम्' में 'ज' की, तथा 'ग्रहगतिर्विफला' में 'ग' की, इस प्रकार अनेक व्यञ्जनों की एक बार आवृत्ति (समानता) हुई है, अतः छेकानुप्रास अलंकार है।

द्वितीय श्लोक में 'कलिकालजानाम्' में 'क' और 'ल' की 'तावत्परिपाल्यतेऽमुना' में 'प' की एक बार आवृत्ति (समानता) हुई है, अतः यहाँ भी छेकानुप्रास है।

इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी कवि ने छेकानुप्रास अलंकार से अपने काव्य की शोभा बढ़ाई है।[14]

(वृत्यानुप्रास)

लक्षण – अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद वाप्यनेकधा।
एकस्य सकृदप्येष वृत्यनुप्रास उच्यते।।[15]

अर्थात् वृत्यनुप्रास वह शब्दालंकार है जिसमें अनेक व्यञ्जनों की एक प्रकार से (केवल स्वरूप से, क्रम से नहीं) समानता हो, अथवा अनेक व्यञ्जनों की अनेक बार (स्वरूप तथा क्रम से) समानता हो, वृत्यनुप्रास होगा।

उदाहरण –

उच्चवंशोद्भवो नीचकर्माश्रितो
रावणो राक्षसेन्द्रश्च सीताहरः।
येन युद्धे यमस्यालयं प्रेषितो
रामभद्राय तस्मै मदीयं नमः।।[16]

प्रस्तुत पद्य में 'उच्चवंशोद्भवो' में 'व' की एक बार द्वितीय पंक्ति में 'र' की क्रम से एक बार तथा तृतीय पंक्ति में 'य' की क्रम से अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास है।

'वाल्मीकिसम्भवम्' में कई स्थलों पर वृत्यानुप्रास का प्रयोग है।[17]

(श्रुत्यनुप्रास)

लक्षण – उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते।।[18]

अर्थात् श्रुत्यनुप्रास अलंकार में तालु, कण्ठ, मूर्द्धा, दन्त आदि किसी एक उच्चारण स्थान में उच्चरित व्यञ्जनों की समानता होती है।

उदाहरण –

जना जगत्यामिह मोहमय्यां
लाभो न कश्चित्स्वपरीक्षणेन।
सत्येव दूरेऽत्र जने स्वदर्पणात्
छाया तदीयापि न तत्र दृश्यते।।[19]

प्रस्तुत श्लोक में 'जगत्यामिह' में 'तालु' से उच्चरित होने वाले 'ज' और 'य' वर्णों की समानता है, उसी प्रकार 'तदीयापि' और 'दृश्यते' में दन्त से उच्चरित होने वाले 'त' और 'द' वर्णों की समानता है। अतः यहाँ श्रुत्यनुप्रास अलंकार है।

कवि ने अन्य कई जगहों पर 'वाल्मीकिसम्भवम्' में श्रुत्यनुप्रास का

[9] छन्दोलंकारसौरभम्, पृ. 59
[10] सा. द., 10/2
[11] सा. द., 10/3
[12] वा.स. 2.1
[13] वही 1.6
[14] वा.स., 1.1, 1.2, 1.5, 1.7, 1.8, 1.9, 1.10, 1.11, 1.12, 1.15, 2.1, 2.2, 2.4, 2.6, 3.2, 3.4, 3.6, 3.7, 3.9, 6.6, 6.8, 6.9, 6.10
[15] सा.द., 10/4
[16] वा.स. 6.3
[17] वा.स., 1.9, 3.7, 3.3, 5.1, 5.2, 5.3, 5.4, 5.6, 6.3, 6.4, 6.5, 6.11
[18] सा.द., 10/5
[19] वा.स. 1.4

प्रयोग किया है।[20]

(अन्त्यानुप्रास)

लक्षण – व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्।।[21]

अर्थात् अन्त्यानुप्रास अलंकार में प्रथम स्वर के साथ यथावस्थ व्यञ्जन की ऐसी आवृत्ति होती है जो पद अथवा पाद के अन्त में होती है।

उदाहरण –
श्रीराम एवास्ति महादयालुः।
लोके स एवास्ति महाकृपालुः।
सर्वस्य विश्वस्य स पालकोऽस्ति
स पापपुञ्जस्य च नाशकोस्ति।।[22]

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम तथा द्वितीय चरण के अन्त में 'दयालुः' तथा 'कृपालुः' शब्दों में आलुः (व्यञ्जन युक्त स्वर) की आवृत्ति हुई है तथा तृतीय एवं चतुर्थ चरण के अन्त में 'अस्ति' की आवृत्ति हुई है, अतः यह श्लोक पादान्तगत अन्त्यानुप्रास का उदाहरण है।
'वाल्मीकिसम्भवम्' में अन्य कई जगहों पर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है।[23]

(काकु वक्रोक्ति)

लक्षण – अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा।।[24]

अर्थात् वक्रोक्ति वह शब्दालंकार है जहाँ काक या श्लेष के कारण किसी व्यक्ति के अन्य अर्थ वाले वाक्य को किसी भिन्न अर्थ में ग्रहण कर लिया जाता है। वक्रोक्ति के दो भेद होते हैं–

श्लेष वक्रोक्ति – जहाँ शब्द दो अर्थ वाले होते हैं तथा काकु वक्रोक्ति कहने के तरीके से अर्थ में परिवर्तन आ जाना।

उदाहरण –
कवीनां रससिद्धानां
हितकारि श्रुतिप्रियम्।
हृदयादुत्थितं कथ्यं
श्रोतुं को नो समीहते?।।[25]

प्रस्तुत श्लोक में (काकु) बोलने की विशेष विधा के कारण द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में 'श्रुतिप्रियम्', 'श्रोतुं को नो समीहते' कर्णप्रिय वचनों को कौन नहीं सुनना चाहता अर्थात् सभी सुनना चाहते हैं।
यहाँ बोलने की विशेष विधा के कारण 'काकु वक्रोक्ति' शब्दालंकार है। कवि ने 'काकु वक्रोक्ति' का 'वाल्मीकिसम्भवम्' में एक स्थान पर ही प्रयोग किया है।

(अर्थालंकार)

(उपमा) पूर्णोपमा

लक्षण – साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।[26]

अर्थात् एक वाक्य में दो पदार्थों की वैधर्म्य रहित तथा स्पष्ट रूप से प्रतिपादित समानता को उपमा कहते हैं।
उपमा के चार अंग होते हैं– उपमान, उपमेय, साधरण धर्म तथा उपमावाचक शब्द।[27] उपमा के मुख्यतः दो भेद हैं– पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा।
जहाँ उपमा के अंग– उपमेय, उपमान, साधरण–धर्म तथा उपमावाची शब्द में से कोई एक, दो या तीन न हों तो लुप्तोपमा होती है तथा चारों अंगों के रहने पर वह पूर्णोपमा कहलाती है।

सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च।
उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यम्।।[28]
लुप्ता सामान्यधर्मादेरेकस्य यदि वा द्वयोः।
त्रायाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत्।।[29]

(पूर्णोपमा) उदाहरण –
एकेव घटना सूते
भिन्नं भिन्नं फलं जने।
दुःख क्वापि सुखं क्वापि
स्वातीवृष्टं जलं यथा।।[30]

अर्थात् स्वाती नक्षत्र में बरसे हुए जल की तरह एक ही घटना लोगों में कहीं दुःख तो कहीं सुख के रूप में भिन्न–भिन्न फलों को जन्म देती है।
प्रस्तुत श्लोक के प्रथम चरण में 'घटना' उपमेय 'स्वातीवृष्टं' उपमान, 'जलं' उपमान तथा उपमेय दोनों में साधरण धर्म है, 'यथा' उपमावाची शब्द है। अतः पूर्णोपमा अलंकार है।

सर्वेषामिहकल्याणं
कुर्वती प्रकृतिर्जनैः।
विष्णुमायेव वन्द्यास्ति
वन्द्याः कल्याणकारिणः।।[31]

भगवान् विष्णु की माया की भाँति यहाँ सब का कल्याण करने वाली प्रकृति की लोगों को वन्दना करनी चाहिए। कल्याण करने वाले लोग वन्दनीय होते हैं।
प्रस्तुत श्लोक के द्वितीय चरण में 'प्रकृति' उपमेय 'विष्णुमाया' उपमान 'कल्याणं' साधरण धर्म तथा इव उपमावाची शब्द है। अतः पूर्णोपमा अर्थालंकार है।

(दृष्टान्त)

लक्षण – दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।[32]

अर्थात् दो वाक्यों में समान धर्म से युक्त उपमान और उपमेय के बिम्ब–प्रतिबिम्बन को दृष्टान्त अलंकार कहते हैं।

उदाहरण –
यादृंशि कर्माणि करोति मानवः
फलानि तादृंशि हि सोऽत्र विन्दते।

---

20 वही, 3.2, 1.2, 1.4, 1.6, 1.7, 1.8, 1.9, 1.10, 1.11, 1.15, 2.1, 2.2, 2.3, 2.4, 2.6, 3.1, 3.2, 3.3, 3.4, 3.7, 3.8, 3.9, 3.10, 3.13, 3.16, 3.17, 3.18, 3.21, 3.22, 4.1, 5.5, 5.7, 5.8
21 सा.द., 10/6
22 वा. स., 5/6
23 वही, 6.4, 1.15, 3.14, 3.15
24 सा. द., 10/9
25 वा.स. 1/2
26 सा.द. 10/14
27 छ.सौ., पृ. 51
28 सा.द. 10/15
29 वही, 10/17
30 वा.स. 2/5
31 वा.स. 3/10
32 सा.द. 10/50

रसालरोपीह रसालमश्नुते
बर्बूरवप्ता लभते च कण्टकम्।।[33]

अर्थात् मनुष्य जैसे कर्म करता है, निश्चय ही वह यहाँ वैसे फल पाता है। यहाँ आम लगाने वाला आम खाता है और बबूल बोने वाला काँटे पाता है।
प्रस्तुत श्लोक में 'मनुष्य के कर्म करना' के साथ 'आम लगाने वाला' तथा 'फल पाना' के साथ बबूल बोने वाला काँटे पाता है के सादृश्य की प्रतीति होती है। इस प्रकार यहाँ उपमानोपमेयभाव का प्रतिबिम्बन है। अतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।
कवि ने अन्यत्र भी दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया है।[34]

(दृष्टान्त वैधर्म्य)

उदाहरण –

ध्रुवममी मनुजा जडबुद्धयो
विदधते स्वजनाय विकर्म ये।
अपरसद्मतमोविनिवृत्तये
न सुधियो ज्वलयन्ति निजं गृहम्।।[35]

अर्थात् वे लोग निश्चय ही मूर्ख हैं, जो अपनों को सुख देने के लिए बुरे काम करते हैं। समझदार लोग दूसरों के घरों के अन्धकार को मिटाने के लिए अपना घर नहीं जला डालते हैं।
प्रस्तुत श्लोक में उपमानोपमेय भाव से दोनों पंक्तियों में वैधर्म्य प्रतीत होता है। अतः यहाँ वैधर्म्य दृष्टान्त अलंकार है।

(काव्यलिङ्ग)

लक्षण – हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते।[36]

अर्थात् जहाँ वाक्यार्थ अथवा पदार्थ किसी के हेतु के रूप में उपनिबद्ध हों वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है।

उदाहरण –

कस्यापि देहान्नहि वस्त्राकर्ष
विधत्त तत्सौष्ठव – वीक्षणार्थम्।
शक्नोत्युपैतुं हि तदैव वो दृशं
तदङ्ग–सौन्दर्य्य–महादरिद्रता।।[37]

अर्थात् किसी के भी शरीर से उसकी सुन्दरता को देखने के लिए उसके कपड़ों को मत हटाओ। क्योंकि तभी उसके शरीर के अंग की बहुत बड़ी बदसूरती तुम्हारी नजर के सामने आ सकती है।
यहाँ प्रथम पंक्ति, द्वितीय पंक्ति के हेतु के रूप में उपनिबद्ध है। कपड़ों को हटाने से शरीर के अगों की बदसूरती नजर के सामने आती है। अतः यह हेतु रूप में उपनिबद्ध होने से यहाँ काव्यलिंग अलंकार है।
वाल्मीकिसम्भवम् में अन्यत्र कई स्थलों पर काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।[38]

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

लक्षण – क्वचिद्विशेषः सामान्यात्सामान्यं वा विशेषतः।

कार्यान्निमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्सम्।
अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेद् गम्यते पञ्चधा ततः।।
अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद् –[39]

अर्थात् जहाँ अप्रस्तुत सामान्य से प्रस्तुत विशेष की अभिव्यञ्जना हो; वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है।

उदाहरण –

कुसगंदोषात् सुजनोऽपि दुर्जनी–
भवन् समाजे परितो विलोक्यते।
मद्यस्य संगेन पयोऽपि गव्यं
सतोऽपि बुद्धिं भ्रमयत्यवश्यम्।।[40]

प्रस्तुत श्लोक में – कुसंग में पड़ जाने के कारण सज्जन भी समाज में सब तरफ दुर्जन बनता दिखता है – यह सामान्य प्रस्तुत है, किन्तु दूध और शराब के द्वारा विशेष का अभिधान किया गया है। सामान्य से विशेष व्यंग्य है, अतः यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।
'वाल्मीकिसम्भवम्' में अन्यत्र भी 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलंकार है।[41]

(एकावली)

लक्षण – पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।

स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात्तदैकावली द्विधा।।[42]

अर्थात् जहाँ प्रत्येक उत्तरोत्तर (अगली) वर्ण्य वस्तु का पूर्व–पूर्व वर्णित वस्तु के विशेषण के रूप में स्थापन या अपोहन (रखना या हटाना) वर्णित हो वहाँ एकावली अलंकार होता है।

योऽस्ति रामः स एवास्ति कृष्णोप्यहो
राघवो यस्स एवास्त्यहो यादवः।
योऽस्ति सीतापतिस्सोऽस्ति राधाप्रियो
या च सीतास्ति सैवास्त्यहो राधिका।।[43]

अर्थात् जो राम हैं, वही कृष्ण भी हैं; जो राघव हैं, वही यादव हैं; जो सीतापति हैं, वही राधप्रिय हैं; और जो सीता हैं, वही अहो! राधा हैं।
यहाँ पूर्व–पूर्व वर्णित प्रथम पंक्ति के लिए उत्तरोत्तर वर्णित द्वितीय पंक्ति विशेषण के रूप में उपनिबद्ध है। अतः यहाँ एकावली अलंकार है।
यहाँ पूर्णरूपेण एकावली अलंकार की प्रतीति नहीं हो रही है किन्तु अनुभव करने से एकावली अलंकार की प्रतीति होती है।

(निदर्शना)

लक्षण – सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित्।

यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोध्येत् सा निदर्शना।।[44]

अर्थात् जहाँ वस्तुओं का सम्बन्ध सम्भव (अबाधित) अथवा असम्भव (बाधित) होकर उनके बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव का बोध कराए वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

---

[33] वा.स. 1.3
[34] वा.स. 1.13
[35] वही 3/8
[36] सा.द. 10/62
[37] वा.स. 1.5
[38] वही 1.7, 1.8, 3.3, 3.5, 3.6, 3.17, 5.3, 5.4, 5.7, 5.8, 6.8, 6.9
[39] सा.द. 10/58
[40] वा.स. 1/10
[41] वही, 1.11, 3.2
[42] सा.द. 10/77
[43] वा.स. 6/5, पृ. 72
[44] सा.द. 10/51

उदाहरण – रघुकुलस्य वधूः क्व विदेहजा?
क्व हरणं च तदीयमहो वने?
न विपदेव जनं समुपैत्यहो
विपदमेव जनोऽप्ययते क्वचित्।[45]

अर्थात् रघुकुल की बहू और राजा जनक की पुत्री सीता कहाँ और हाय दण्डकारण्य में उनका अपहरण हो जाना कहाँ? आश्चर्य है; यहाँ विपत्ति ही मनुष्य के पास नहीं पहुँचती है; कहीं मनुष्य भी विपत्ति के ही पास चला जाता है।
प्रस्तुत श्लोक में राजा जनक की पुत्री सीता का 'अपहरण हो जाना' से वर्णन है कि कहाँ राजा की पुत्री और कहाँ इनका अपहरण होना। अर्थात् यहाँ असम्भव को सम्भव दिखाया गया है। अतः निदर्शना अलंकार है। कवि ने एक स्थल पर अन्यत्र भी निदर्शना अलंकार का प्रयोग किया है।[46]

(उल्लेख)
लक्षण – क्वचिद् भेदाद ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित्।

एकस्यानेकधोल्लेखो यः, स उल्लेख उच्यते।।[47]

अर्थात् जहाँ ज्ञाता के भेद से या विषय आदि के भेद से एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन हो वहाँ उल्लेख अलंकार होता है।

उदाहरण – राघवं रामभद्रं च सीतापतिं
ताड़कानाशनं शम्भुचापच्छिदम्।
दूषणारिं खरारिं तथा श्रीहरिं
रावणारिं भजे कुम्भकर्णच्छिदम्।[48]

अर्थात् श्री विष्णु के अवतार बने, रघुवंश में जन्म लेने वाले और ताड़का का विनाश करने वाले, शिव के धनुष को तोड़ने वाले, दूषण को मारने वाले, खर को मारने वाले, कुम्भकर्ण को मारने वाले, रावण को मारने वाले, सीता के पति, श्री रामचन्द्र का मैं भजन करता हूँ।
प्रस्तुत उदाहरण में श्रीकृष्ण का एक होते हुए विषय के भेद से अनेक प्रकार से वर्णन होने से यहाँ उल्लेख अलंकार है।
'वाल्मीकिसम्भवम्' रचना में कई स्थलों पर उल्लेख अलंकार का प्रयोग हुआ है।[49]

(रूपकम्)
लक्षण – रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।[50]
अर्थात् जहाँ निषेध रहित उपमेय पर उपमान के अभेदारोप का वर्णन हो वहाँ रूपक अलंकार होता है।

उदाहरण – भज गौरीशं भज सीतेशं
भज राधेशं मूढमनः।
भवाब्धि–भीषणलहरीपुञ्जात्
त्वां नाविष्यति काऽपीतरथा।।[51]

अर्थात् हे मूर्ख मनवाले मनुष्य! तू गौरीश को भज; तू सीतेश को भज; और तू राधेश को भज। वरना इस संसाररूपी समुद्र की भयंकर लहरों के झुण्ड से तुझे कोई भी नहीं बचाएगा।
प्रस्तुत पद्य में 'भवाब्धि' संसार रूपी समुद्र में 'संसार' उपमेय पर 'समुद्र' उपमान के निषेध रहित अभेदारोप का वर्णन होने से 'रूपक' अलंकार है।
कवि ने अन्यत्र भी रूपक अलंकार का प्रयोग किया है।[52]

(दीपक)
लक्षण – अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।

अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्।।[53]

अर्थात् जहाँ अप्रस्तुत और प्रस्तुत पदार्थों में एक धर्म का सम्बन्ध हो अथवा अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो वहाँ दीपक अलंकार होता है।

उदाहरण – लोके पापाचरणं कृत्वा
नैव विनाशय निजपरलोकम्।
पुण्यमुपार्जय पुण्याचरणैः
कीर्त्तिं चार्जय जनहितकार्यैः।।[54]

अर्थात् समाज में पापाचरण करके अपने परलोक को मत बिगाड़। अपने पुण्याचरणों द्वारा पुण्य का उपार्जन कर; और जनकल्याण के कार्यों द्वारा कीर्ति को उपार्जित कर। यहाँ अनेक क्रियाओं का कर्त्ता एक होने से दीपक अलंकार है।

(उदात्त)
लक्षण – लोकातिशयसंपत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।[55]

यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत्।।

अर्थात् लोकोत्तर सम्पत्ति का वर्णन 'उदात्त' अलंकार कहलाता है और यदि महापुरुष आदिकों का चरित प्रस्तुत वस्तु का अंग हो तब भी यही अलंकार होता है।

उदाहरण – श्रयत भो मनुजा भवनाविकं
सकलशक्तिधरं छलनापतिम्।
भुवि यदीयकृपातरणीस्थिता
न निपतन्ति जना भवसागरे।।[56]

अर्थात् हे मनुष्यों! संसार में जिनकी कृपा की नाव पर बैठे हुए लोग संसार के समुद्र में नहीं गिरते हैं, उन भवसागर के मल्लाह बने, सम्पूर्ण शक्तियों के स्वामी, मायापति भगवान् विष्णु का सहारा ले लो।
यहाँ भगवान् विष्णु का चरित संसाररूपी समुद्र का अंग है। भगवान् विष्णु का सहारा लेकर पापों से बचने की बात कही गई है। अतः

[45] वा.स. 2/2
[46] वा.स. 1/4
[47] सा.द. 10/37
[48] वा.स. 6/1
[49] वा.स. 6.2, 6.3, 6.4
[50] सा.द. 10/28
[51] वा.स. 3/21
[52] वा.स. 1.12, 3.3, 3.4, 5.5
[53] सा.द. 10/48
[54] वा.स. 3/16
[55] सा.द. 10/94
[56] वा.स. 3/4

यहाँ उदात्त अलंकार है।

इस प्रकार 'वाल्मीकिसम्भवम्' नाटक की अलंकार रचना का अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि कवि ने अपनी रचना के सौन्दर्य के लिए अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है, यथा– अनुप्रास, वक्रोक्ति, उपमा, दृष्टान्त, काव्यलिंग, अप्रस्तुतप्रशंसा, एकावली, निदर्शना, उल्लेख, रूपक, दीपक, उदात्त इत्यादि है। कवि को 'अनुप्रास' तथा 'काव्यलिंग' अलंकार अत्यधिक प्रिय हैं। 'अनुप्रास' अति प्रचलित अलंकार है। इस अलंकार के प्रयोग से प्रत्येक कवि अपनी रचना के सौन्दर्य को बढ़ाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'अलंकारमीमांसा', डॉ. सुनीता गुप्ता, श्री सोमनाथ ढल, संजय प्रकाशन, दिल्ली–110053, वर्ष 2000।
2. आनन्दरामायण, पं. युगलकिशोरद्विवेदिना, पं. पुस्तकालय, काशी 1 वर्ष 1958।
3. अलंकारों का ऐतिहासिक विकास। डॉ. राजवंश सहाय हीरा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, वर्ष 1974।
4. अलंकार शास्त्र का इतिहास। रतिराम शास्त्री , अध्यक्ष साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ–2।
5. काव्यप्रकाश मम्मट कृत। डॉ॰ श्री निवासशास्त्री, रतिराम शास्त्री साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ–2।
6. छन्दोलंकारसौरभम्। डॉ. (श्रीमती) सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली–110094, संस्करण 2014।
7. दशरूपक, धनञ्जयकृत। डॉ. भोलाशंकर न्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–221001।
8. नाट्यशास्त्र 'भरतमुनि प्रणीत'। सम्पादक– डॉ. रविशंकर नागर। परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983।
9. भीष्मचरितम्। डॉ. हरिनारायण दीक्षित। ईस्टर्न बुक लिंकर्स, वर्ष 1991।
10. मनुजाश्शृणुत गिरं मे। डॉ. हरिनारायण दीक्षित। ईस्टर्न बुक लिंकर्स, वर्ष 2009।
11. मूल रामायण। गिरि कपिलदेव। चौखम्बा ओरियन्टालिया, वर्ष 1982।
12. वाल्मीकिसम्भवम्। हरिनारायण दीक्षित। ईस्टर्न बुक लिंकर्स, वर्ष 2010।
13. वृत्तरत्नाकर। भट्टकेदारविरचितम्। नरेन्द्र जैन मोतीलाल बनारसीदास, वर्ष 1972।
14. स्कन्द पुराण (भाग–1–2)
15. संस्कृत साहित्य का इतिहास। बलदेव सिंह उपाध्याय। शारदा मन्दिर, वाराणसी, सप्तम संस्करण।
16. साहित्यदर्पण, विश्वनाथकृत। आचार्य लोकमणिदास, डॉ. त्रिलोकीनाथ द्विवेदी, आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी। रतिराम शास्त्री अध्यक्ष साहित्य भण्डार, सुभाष।